

पुनर्मुद्रण



“ ऋतम्भरा स्यादमृतत्ववर्षिणी ”

ऋतम्भरा

योग की त्रैमासिक पत्रिका

योग तथा मानवीयमूल्यों की शिक्षा

डॉ. बी. आर. शर्मा श्री. टी. पी. श्रीकुमारन्



जनवरी १९९३

वर्ष ६

अंक १

कैवल्यधाम, लोणावला ४१० ४०३, पुणे
महाराष्ट्र (भारत)

योग तथा मानवीयमूल्यों की शिक्षा

डॉ. बी. आर शर्मा

(शोधअधिकारी)

एवं

श्री. टी. पी. श्रीकुमारन्

(योगप्रशिक्षक)

कैवल्यधाम, लोनावला, पूना.

मूल्यान्वेषण एक परम्परागत प्रक्रिया है। सदियों से साधक, चिन्तक एवं शिक्षाशास्त्री यह जानने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं कि वे कौन से महनीयतत्व अथवा मूल्य हैं, जो मानव को सुसंस्कृत एवं सार्थक जीवन व्यतीत करने की क्षमता प्रदान करते हैं। चिन्तन की इसी प्रयत्नशीलता के कारण नैतिक एवं आध्यात्मिक आदि विविध मूल्यदृष्टियों का प्रादुर्भाव होता है। सब मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक है। विवेक से विचार बनते हैं, विचारों से धारणा का जन्म होता है एवं धारणा से मूल्यों का निर्माण। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ विशिष्ट धारणाएँ होती हैं। ये विशिष्ट धारणाएँ बहुसम्मत होकर तद्विषयक मूल्यों को जन्म देती हैं। मूल्य कोई शाश्वत मान्यता नहीं। प्रत्येक युग के मूल्य उसकी आवश्यकताओं पर निर्धारित किए जाते हैं। आज मानवीयमूल्यों में सर्वत्र उत्क्रान्ति मची हुई है। मनुष्य अपने लक्ष्यविन्दु को निर्धारित करने में असमर्थता का अनुभव कर रहा है। शिक्षा एक ऐसी सशक्त विधा है, जिस के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व जैसे मूल्य का निर्माण कर इस दिशाहीनता को सहीमार्ग पर ला सकता है। यही कारण है कि आज सरकार ने मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए योग जैसी प्राचीन शिक्षा को

अपनी नई शिक्षा पद्धति में सम्मिलित करने का आंशिक प्रयास किया है। प्रस्तुत लेख में सर्वप्रथम शिक्षा के मूल उद्देश्यों तथा योग उस दिशा में मानवीय मूल्यों की स्थापना करने में कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकता है, उस पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

शिक्षा के मूल उद्देश्य— शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना है, जिस के माध्यम से वह अपने कर्तव्याकर्तव्य को पहचानने की क्षमता प्राप्त कर सके। यह तभी संभव हो सकता है जब उसे स्वकर्तव्य परायण होने की शिक्षा दी जाए। जिस से वह जीवन में आनेवाली अनेक विध परिस्थितियों में अपनी कर्तव्याकर्तव्यबुद्धि से निर्णयात्मक रेखा खींचने की क्षमता प्राप्त कर सके। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी तथ्य की पुष्टि “किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः२ ” इस कथन से होती है। इस तथ्य का समाधान योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को “स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः३ ” इत्यादि शिक्षाप्रद वचनों से स्वकर्तव्य-परायण होने की शिक्षा दी। जिस से प्रेरित होकर ही अर्जुन युद्ध करने के लिए तत्पर हुए। उपर्युक्त तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि यदि व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे अपने करणीय एवं अकरणीय का बोध प्राप्त करना होगा। इस प्रकार का निर्णयात्मक बोध व्यक्ति तभी प्राप्त कर सकता है। जब व्यक्तिविशेष की योग्यता को ध्यान में रखकर उस का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होगा।

वरसिंग४ एवं बासेट५ जैसे आधुनिक पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों ने भी व्यक्तिविशेष को केन्द्रित कर उसका सर्वाङ्गीण विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया है। उन का कथन है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्थान एवं महत्व होता है। एक व्यक्ति जिस कार्य को सुचारुरूप से संपादित कर सकता है,

दूसरा व्यक्ति उस कार्य के संपादन में असमर्थ भी हो सकता है । इसका अभिप्राय यह नहीं कि असमर्थ व्यक्ति का समाज में कोई स्थान या महत्त्व नहीं । क्योंकि किसी एक क्षेत्र में असमर्थ व्यक्ति किसी दूसरे क्षेत्र में दक्ष भी हो सकता है । इस लिए व्यक्ति विशेष की योग्यता का निर्धारण कर उसका विकास करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए । समाज का सुधार व्यक्तिविशेष के सुधार पर निर्भर करता है । समाज में सुधार की अपेक्षा तभी की जाती है तब प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों को भलीभांति समझकर स्वकर्तव्योन्मुख हो जाए तभी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सफल माना जा सकता है । ६ यूनेस्को ने भी उसी तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है कि शिक्षा में व्यक्ति ही केन्द्रबिन्दु होना चाहिए । तभी उस के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक आदि मानवीय मूल्यों को बढ़ावा मिल सकता है । अर्थात् तभी व्यक्ति को पूर्ण मानव बनने में मदद मिल सकती है ।

योग तथा व्यक्ति विशेष की शिक्षा :- महर्षि व्यास ने योग को समाधि अर्थ में प्रयुक्त माना है^७ । जिस का अभिप्राय व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक आदि विभिन्न मानवीय मूल्यों का समन्वय ही है । योगशास्त्र के प्रवक्ता महर्षि पतञ्जलि ने उपर्युक्त समन्वय के लिए प्रथमतः क्रियायोग के महत्त्व पर बल दिया है । जिस से व्यक्ति स्वयं स्वाध्याय के माध्यम से अपने आप की पहचान, तप से कर्मकुशलता एवं ईश्वर प्राणिधान से आध्यात्मिक आदि मूल्यों को समझने की शक्ति प्राप्त करता है । क्रियायोग में हठयोग, कर्मयोग एवं भक्ति योग के विशिष्ट तत्वों का समन्वय बड़ी सुन्दरता से किया गया सा लगता है । जिस के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व जैसे मूल्य को बढ़ावा मिल सकता है । जैसे हठयोग से व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास, कर्मयोग से कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय एवं भक्तियोग से अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण समर्पण जैसे भावों का समन्वय प्राप्त किया जा सकता है ।

योग संस्थान कैवल्यधाम, लोनावला के संस्थापक स्वामी कुवल्यानंदजी एवं डा. विनेकर ने क्रियायोग के कुछ तथ्यों का प्रायोगिक आधार प्रतिपादित किया है। उन का कथन है कि “क्रियायोग में बाह्य तथा आन्तरिक, शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के प्रभावों पर ध्यान दिया गया है। ऐसी प्रतिरोध शक्ति का निर्माण करना ही इस का उद्देश्य है, ताकि मन एवं शरीर पर होनेवाले अनेकविध दुष्प्रभावों का सफलतापूर्वक सामना किया जा सके। एक संतुलित व्यवहार एवं स्थिरव्यक्तित्व, जो कि योग का सही लक्ष्य है, के लिए मन एवं शरीर की ऐसी सुरक्षा व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है। — यह समझ लेना आवश्यक है कि क्रियायोग स्वास्थ्य तथा सुखानुभूति के इस स्तर में ऊँची से ऊँची संभाव्य अवस्था तक उन्नति कराने के लिए सक्षम है”। इन सब तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि मानवीय मूल्यों में सर्वप्रथम मानवव्यक्तित्व जैसे मूल्य को बढ़ावा देना आवश्यक है। पूर्ण व्यक्तित्ववान् पुरुष ही अन्य सामाजिक, व्यवहारिक एवं धार्मिक आदि मूल्यों का स्रष्टा स्वीकारा गया है। अतः क्रियायोग द्वारा व्यक्तित्व निर्माण के लिए निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक लगता है। —

१) यौगिक शिक्षा व्यक्तिपरक होती है, व्यक्ति विचार पूर्वक स्वयं इस में प्रवृत्त होता है। इस लिए इस व्यक्ति विशेष पर थोपा नहीं जाना चाहिए।

२) योग्य एवं अनुभवी शिक्षक ही व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं को पहचान कर सही शिक्षा प्रदान कर सकता है।

३) श्रद्धापूर्वक, अनुकूल वातावरण एवं सही मार्गदर्शन से ही शिक्षार्थी शारीरिक एवं मानसिक समेकता (स्थिरता) प्राप्त कर सकता है।

४) व्यक्तित्व विकास के लिए स्वास्थ्य परक दिनचर्या, पथ्यापथ्य, अनुकूल वातावरण एवं मानसिक सन्तुलन के लिए ध्यान आदि के अभ्यास का प्रावधान भी आवश्यक होना चाहिए।

अतः क्रिया योग की शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास समेकिता की दृष्टि से किया जा सकता है क्योंकि क्रिया-योग में व्यक्ति के शरीर, मन एवं आत्मा को अलगाव भाव से न देख कर समन्वय की दृष्टि से देखा गया है । जिस से व्यक्ति अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास प्राप्त कर अपने स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ विचार से स्वकर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यौगिक शिक्षा व्यक्तिपरक होती है । जिस के माध्यम से सुशिक्षित हो कर व्यक्ति जीवन में अपनी सुविचारशीलता, कर्मकुशलता एवं विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक आदि अनेकविध समस्याओं का सामना करने की क्षमता प्राप्त कर सकता है । अर्थात् ऐसे योग द्वारा सुशिक्षित व्यक्ति का संयमित व्यवहार समाज में स्वतः मानवीय मूल्यों का आधार वा स्रष्टा बन जाता है । क्योंकि अनुकरण द्वारा भी व्यक्ति अपने आधे अधूरे व्यक्तित्व को पूर्ण बनाता है । इस अनुकरण की प्रक्रिया में अनेकविध मानव मूल्यों का विकास होता है । इस प्रकार मनुष्य, पहले समाज से मूल्यों का अर्जन करता है फिर परिश्रमशीलता से उन का विकास । परिवार, पाठशाला और समाज ये तीनों ही मूल्य निर्माण एवं विकास प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग अथवा सोपान हैं । अतः मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए नई शिक्षा पद्धति में क्रिया योग के मूलभूत तथ्यों का पूर्णतया समावेश आवश्यक लगता है । जिस से प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाङ्गीण विकास की अपेक्षा की जा सकती है ।

संदर्भ ग्रन्थ—

- १) राष्ट्रीय नई शिक्षा नीति (हिन्दी) पृ. १७-१९ ।
- २) श्रीमद्भगवद्गीता ४-१६ ।

३) वही १८-४५ ।

४) वरसिंग मैरी ई : टीचिंग एण्ड फिलासाफी ए संधिसिस, हाफ-टन मिफलिन, बोसटन, १९७२, पृ. १२७ ।

५) टी. रोवर्ट बासेट : एजुकेशन कार दी इन्डिविजुअल-ए हिम्यू-निस्टिक इन्ड्रोडेक्शन, हरपर रो, पब्लीशर्ज, न्यूयार्क, १९७८, पृ. ४०-४१, ३५२-३७६ ।

६) यूनेस्को : रिपोर्ट आफ दी इन्टरनेशनल कमीशन आन दी डेवलपमेन्ट आफ एज्युकेशन-लरनिंग टू बी, स्टर्लिंग पब्लीशर्ज, नई दिल्ली १९७३, पृ. १५३-१५९ ।

७) व्यास भाष्य १. १ ।

८) योग सूत्र २-१-२ ।

९) स्वामी कुवलयानन्द एवं डॉ. एस. एल. विनेकर : यौगिक चिकित्सा (मूल सिद्धान्त तथा प्रणाली) केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो भारत सरकार नई दिल्ली (हिन्दी अनुवाद : ओ. पी. तिवारी) १९७१, पृ. ९-१० ।

-अन्तः लिखित

१९९-७९ गु (विश्वी) गीति गद्यी के प्रस्थित (१)

१९९-४ गीतिगद्यी के प्रस्थित (२)